अधूरा है काम उसे पूरा करें

दामिनी के निधन पर एक समाचारपत्र ने यह शीर्षक दिया- हमें जगाकर 'वह चली गई'। एक तरह से यह सच ही तो है। पूरा देश दिल्ली की बस में हुए शर्मनाक और अमानवीय दुष्कर्म पर जैसे जाग गया हो। यहां तक कि असावधानी से टिप्पणी करने वालों की ऐसी त्वरित और चौतरफा आलोचना होती देखी कि वे सहम गये और अपनी अभिव्यक्ति पर खेद जताते देखे गये। अधिकारी और अन्य जिम्मेदार लोग भी इस मामले में सतर्क दिखाई दिये। खरगोन में एक संगोष्ठी में महिला वैज्ञानिक ने अपनी की गई प्रतिकूल टिप्पणी पर ऐसी और त्वरित प्रतिक्रिया की कल्पना भी नहीं की होगी और न यह सोचा होगा कि आयोजक पुलिस अधिकारी भी उसका संज्ञान ले लेंगे।

सामान्यत: होता भी यही है कि लोग अपने बोल को अपनी आजादी मानकर अड़ते हैं और बाकी लोग उसे अभिव्यक्ति की आजादी मानकर चुप हो जाते हैं। पर इस बार ऐसा नहीं हुआ। लोगों की नजर पल-पल इस बारे में क्या किया जा रहा है, क्या कहा जा रहा है, इन सब पर बनी हुई थी। यह जागरण ऐसा था कि चुप रहने वाले प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को एक से अधिक बार बोलना पड़ा और दूर से प्रतिक्रिया को देखने वाली सोनिया गांधी को सरकार के कड़े रुख का भरोसा दिलाना पड़ा। यह भी इसी जागरूकता का ही प्रमाण कहा जायेगा कि सोनिया और मनमोहन दोनों को यह कहना पड़ा कि उनकी भी लड़की है और वे इस दर्द को अनुभव कर रहे हैं और उभरे गुस्से को समझ सकते हैं। जो सरकार लोकपाल पर अड़ी रही, उसने इस बारे में एक सप्ताह के भीतर ही कड़े कानून का मसौदा बना लिया और लोगों को बता दिया। दिल्ली, केन्द्र और पंजाब तथा अन्य सरकारों ने हर मौके पर बताया कि वे इस और ऐसे मामलों के बारे में बहुत सचेत हैं।

लोगों की जागरूकता और गुस्सा ऐसा डर पैदा कर देता है, यह दिल्ली के इस दुष्कर्म की प्रतिक्रिया से पता चलता है। हालांकि कुछ अन्य कारण भी हैं। एक कारण तो यह भी है कि मीडिया ने जिस तरह से इस मामले में लोगों तक दूसरे लोगों की जानकारी पहुंचाई और उस पर विमर्श पैदा किया वह नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। सचमुच ही मीडिया की इस काम के लिए तारीफ करनी होगी। विमर्श का विस्तार और उसकी अनवरतता लोगों को अपनी संवेदना और भागीदारी के लिए प्रेरित करती रही है। लोगों को गुजरात और हिमाचल के नतीजे तो मालूम रहे पर न तो मोदी का राज्यारोहण और न वीरभद्र का शपथ लेना लोगों ने उस तरह से देखा जो सामान्यत: ये लोग या इनके लोग आशा कर रहे होंगे। एक मायने में लोग इस घटना को विराम ही नहीं दे पाये, मीडिया की कवरेज की वजह से। प्रिंट, इलेक्ट्रानिक और वेब या सोशल सभी मीडिया पर यह जानकारी और

विचार तैरते रहे और लोगों को अपने साथ जोड़े रखने में कामयाब रहे। यह बाद तक भी चलता रहा है और महिला सुरक्षा और अस्मिता एक मायने में उसका एजेंडा भी बन गया।

मीडिया जनित सूचनाओं और विचारों से यह तो सामने आया कि लोगों के मन में गुस्सा है, वे फांसी जैसी सख्त सजा के पक्षधर हैं, वे फैसला जल्दी चाहते हैं, वे यह भी चाहते हैं कि व्यवस्था और कानून ऐसा हो कि जिससे महिलाओं की अस्मिता और सुरक्षा भविष्य में भी सुनिश्चित हो सके। यह सब इतना प्रबल और तीव्र आग्रह था कि इसे कोई भी राजनीतिक दल या सरकार अमान्य नहीं कर सकी। यह भी विमर्श के मंथन से ही निकला कि लोगों की सोच में परिवर्तन लाने की जरूरत है और बिना ऐसे परिवर्तन के अकेला कानून या व्यवस्था वह सब नहीं दे सकता है जिसकी आकांक्षा की जा रही है।

यह सोच कैसे बदले यह विमर्श विस्तार नहीं पा सका। यह मीडिया की भी नाकामी कही जा सकती है। यह किसी भी माध्यम पर विकसित नहीं हुआ। न पत्र-पत्रिकाओं में, न टीवी पर और न ही सोशल मीडिया इस संबंध में विस्तार से बात कर सकने में कामयाब रहे। पुरुषों की सोच बदले, यह तो पुरजोर तरीके से कहा गया पर यह डरते-डरते कहा गया कि स्त्रियाँ भी अपने विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन पर सहमत हों।

ब्लॉगों में भी लोगों ने यौन शुचिता की बातें तो की, यह भी कहा गया कि पुरूषों की मानसिकता में बदलाव जरूरी है, स्त्रियों को दोयम माना जाता है, उन्हें भोग की वस्तु या चीज समझा जाता है आदि-आदि पर यह सब कैसे हो। क्या कानून, व्यवस्था से इस तरह के सांस्कृतिक और वैचारिक आचरण के आधार बन सकते हैं, बना सकते हैं, यह विमर्श नहीं हो सका। मीडिया और विकास के संबंध में यह कहा गया है कि मीडिया का वास्तविक प्रभाव मीडिया पर ही निर्भर है। समाज या उसके उपयोग करने वाले न तो इस समय एक जैसे होते हैं और न ही स्थितियां सभी मामलों में एक समान होती हैं।

महात्मा गांधी ने भी मीडिया के दायित्व के संबंध में कहा था कि उसे लोगों की भावनाओं और संवेदनाओं के साथ जुड़ना चाहिये और ऐसी जरूरी बातें भी उनके सामने प्रस्तुत करनी चाहियें जो उनके हितों में जरूरी हों। प्रो. परमिंदर भोगल इसी के साथ यह भी जोड़ते हैं कि मीडिया या तो लोकतंत्र के नाम पर समूह या न्यस्त स्वार्थ की मर्जियों को चलने दे या फिर विकास के लिए उसे रोकने का काम करे। तात्पर्य यह कि मीडिया सिर्फ उन बातों या जानकारियों का मंच बनकर न रह जाये जो लोगों के बीच घटना, प्रसंग या व्यवहारों के कारण पैदा हो रही हैं वरन वह उसके साथ ही उनके हितों में क्या जरूरी है और वह कैसे होगा, इस जरूरत को भी पैदा करे। घटना ने लोगों को संवेधित किया था। लोग उसपर गुस्से में आये। लोग परिवर्तन चाहते हैं। वे घटना फिर से न हो, इसका

आश्वासन भी चाहते हैं। यहाँ तक तो मीडिया लोगों के विमर्श और भावनाओं के साथ बहता रहा है। पर यह कैसे हो सकता है, इसके लिए उसे लोगों के पापुलर या सहज, लोकलुभावन, संवेग सहयोगी, उत्तेजन सहगामी विचार और व्यवहार के बजाय विवेचनात्मक और तथ्यात्मक विचार की जरूरत है। इस पर विवाद संभव है। इसपर विमत भी संभव है। इससे उसके दर्शक, श्रोता और पाठक भी प्रभावित हो सकते हैं। पर यह है जरूरी।

मीडिया में ही किसी कोने में यह व्यक्त किया गया कि सोच को बदले बिना यह सब नहीं होगा। सोच, विचार और मूल्यों के बिना नहीं बदलेगा। विचारों और मूल्यों के लिए उन स्रोतों को देखना होगा जो मनुष्यता, नीति, आस्था, और मन की तलहटी में बसे हुए हैं। जाहिर है, यह सब मन और आकांक्षाओं के मूल में जाने का मामला है। यह मामला है अपने उत्स और अपने होने को ढूंढने का। और यह उतना ही जरूरी है जितना लोगों का जागरूक होकर अपने गुस्से का इजहार करना। लोग बदलेंगे का मायना ही यह है कि लोग अपने उन मूल्यों और संस्कारों को बदलेंगे जिनकी वजह से ऐसी घटनायें होती हैं। उन्हें बदलना उतना आसान नहीं है। उनके लिए भी मीडिया को सतत और अनवरत प्रयास करने होंगे और यह विमर्श सतत जारी रखना होगा। नये वर्ष के संकल्पों में मीडिया को अपने एजेंडा में इस संकल्प को भी जोड़ना चाहिये तभी उसके प्रभाव और स्वीकार्यता का मापन हो सकेगा।

पुनः इस अधूरेपन को आध्यात्म के सहारे पूरा किया जा सकता है क्योंकि आध्यात्म ही व्यक्ति को अपने स्वरूप संस्कार आदि से रुबरु कराता है और अपने आन्तरिक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है।

- कमल दीक्षित

****